वाहन उद्योग में मंदी

देश का 70 अरब डॉलर का वाहन उद्योग हिचकोले खा रहा है. मार्च में कारों की बिक्री में छह फीसदी की कमी रही. इस क्षेत्र में पिछली गर्मियों से गिरावट का सिलसिला जारी है. दोपहिया वाहनों की बिक्री 15 फीसदी कम रही है. यही दशा व्यावसायिक वाहनों की भी है. वाहनों की मांग घटने के कारण कंपनियों को उत्पादन में भी कटौती करनी पड़ी है. वाहन उद्योग में उतार-चढ़ाव का दौर पिछले कुछ सालों से बना हुआ है. कारों की बिक्री में सालाना बढ़त 2018-19 में सिर्फ 2.7 फीसदी रही है, जो की पांच सालों का सबसे खराब प्रदर्शन है. दोपहिया वाहनों की बिक्री इस अवधि में 0.27 फीसदी घटी है. ऐसा 2006 के बाद पहली बार हुआ है. संतोषजनक है कि व्यावसायिक वाहनों की बिक्री बीते वित्त वर्ष में 17.55 फीसदी अधिक हुई है. जानकारों और उद्योग से जुड़े लोगों का मानना है कि इस सेक्टर में मंदी कुछ समय तक बनी रहेगी. इसका एक संकेत लगभग सभी कंपनियों द्वारा उत्पादन में कटौती के फैसले से मिलता है. आम तौर पर बाजार के लिए वाहनों को 40 से 45 दिन पहले तैयार कर रखा जाता है, पर अब इसे घटाकर 30 दिन किया जा रहा है. स्वाभाविक रूप से इसका असर रोजगार पर भी पड़ा है. वर्ष 2017-18 में इस क्षेत्र में रोजगार के अवसर 2.5 फीसदी घटे हैं. साल 2013-14 के बाद वाहन उद्योग सेक्टर में नौकरियां कम होने का यह पहला मौका है. अगर दर के हिसाब से देखें, तो 2011-12 के बाद से यह सबसे बड़ी गिरावट है. एक दौर ऐसा भी था, जब भारतीय वाहन बाजार को दुनिया का सबसे तेज गति से बढ़ता बाजार माना जाता था. साल-दर-साल इस सेक्टर में हजारों रोजगार के अवसर पैदा हुआ करते थे. रोजगार में कमी इसलिए भी चिंता का कारण है कि 2015 और 2017 के बीच इस उद्योग में नौकरियां बढ़ने की औसत दर 37 फीसदी रही थी. वाहन सेक्टर की स्थिति का सीधा संबंध व्यापक आर्थिकी से है. रोजगार घटने और खर्च बढ़ने के कारण बचत में भी कमी आयी है. ऐसे में लोगों, खासकर युवा ग्राहकों, द्वारा बड़े पैमाने पर वाहनों की खरीद कर पाना मुश्किल है. ग्रामीण और कस्बाई इलाकों में कृषि संकट और छोटे कारोबारों के कमजोर होने जैसी विभिन्न वजहों से आमदनी कम होने से हर तरह की मांग पर नकारात्मक असर पड़ा है. उल्लेखनीय है कि वाहन सेक्टर को मजबूत सरकारी संरक्षण प्राप्त है. आयातित वाहनों पर भारी शुल्क के कारण देश में उत्पादित वाहनों को बाहरी कारों, मोटरसाइकिलों और ट्रकों से प्रतिस्पर्धा नहीं मिलती हैं. लेकिन इसके बावजूद निर्माताओं की कमाई संकुचित हो रही है तथा वे तकनीक और डिजाइन में वांछित निवेश नहीं कर रहे हैं. इस कारण भी ग्राहकों का उत्साह कम होता है. सरकार, उत्पादक, निवेशक और नीति-निर्धारकों को वाहन उद्योग के आसन्न संकट पर गंभीरता से विचार करना होगा ताकि अर्थव्यवस्था की बढ़त को कायम रखा जा सके.

कारों की बिक्री में सालाना बढ़त 2018-19 में सिर्फ 2 .7 फीसदी रही है, जो की पांच सालों का सबसे खराब प्रदर्शन है . दोपहिया वाहनों की बिक्री इस अवधि में 0 .27 फीसदी घटी है . ऐसा 2006 के बाद पहली बार हुआ है .

भारत के लिए सतर्क रहना बुद्धिमानी

पुष्पेश पंत
अंतरराष्ट्रीय मामलों के जानकार
pushpeshpant@gmail.com

इधर पूरे देश का ध्यान लोकसभा चुनावों की हलचल ने, उनके शोर-शराबे ने अपनी तरफ आकर्षित कर रखा है, शायद इसलिए दूसरे देशों के चुनावों की चर्चा वैसी नहीं हुई है, जैसी होनी चाहिए.

पहले जिक्र मालदीव का- हजार से ज्यादा नन्हे टापुओं का समूह, जिसे दुनिया के गिने-चुने सूक्ष्म राज्यों में शुमार किया जाता है, कहने को भले ही यह माइक्रो स्टेट संसार के मानचित्र पर सूई की नोक से दर्शाया जा सकता है, हिंद महासागर में अपनी अतिसंवेदनशील भू-राजनीतिक स्थिति के कारण इसका महत्व हमारे लिए चीन या पाकिस्तान से कम नहीं. हकीकत यह है कि ये दोनों देश मालदीव का दुरुपयोग हाल के वर्षों में हमारी पीठ में खंजर भोंकनेवाले अंदाज में करते रहे हैं. करीब पांच-छह साल पहले जनतांत्रिक प्रणाली से निर्वाचित राष्ट्रपति का तख्ता पलटकर अब्दुल्ला यामीन ने सत्ता ग्रहण की थी. आरंभ से ही उनका रवैया भारत विरोधी था. उन्होंने चीन का तुरुप पत्ता खेलने की रणनीति अपनायी, साथ ही मालदीव की सुन्नी मुसलमान बहुसंख्यक आबादी का विज्ञापन कर पाकिस्तान तथा सऊदी अरब जैसे समानधर्मा देशों से सहानुभूति तथा सहायता बटोरने का प्रयास किया. इसी के चलते वह चीन के ऋणजाल में फंसते चला गया और मालदीव की प्रभुसत्ता के लिए संकट पैदा हो गया. आर्थिक सहायता की एवज में चीन को मालदीव की भूमि पर लगभग संप्रभु अधिकार सौंप दिये गये और चीनी कंपनियां दैत्याकार ठेकों के आधार पर बुनियादी ढांचे के निर्माण में जुट गयीं. जाहिर है, चीन को खुश करने के लिए भारतीय कंपनियों के ठेके-सौदे रद्द कर दिये गये. भारतीय राजदूत को अवांछित व्यक्ति घोषित करने की देर बची थी. अक्सर उनकी स्थिति नजरबंद कैदी सरीखी रहती थी. प्राकृतिक आपदा प्रबंधन के लिए भारत ने जो दो हेलीकॉप्टर सुलभ कराये थे, उनके बारे में सैनिक दखलंदाजी का दुष्प्रचार किया गया.

मालदीव के सदियों पुराने रिश्ते अरब जगत से हैं- इस्लाम भी वहां भारत के रास्ते नहीं, समुद्री सौदागरों के माध्यम से ही पहुंचा. मालदीववासी अपने प्राचीन इतिहास पर गर्व करते हैं तथा इसे अपनी अलग पहचान का हिस्सा मानते हैं. भारतीय राजनयिकों द्वारा इस अहं के आहत होने से ही वह भारत से खिन्न होने लगे. मोहम्मद नशीद के पहले एक दशक तक अब्दुल गय्यूम ने मालदीव में निर्वाचित तानाशाह के रूप में राज किया. वह यामीन के रिश्तेदार भी थे, पर इसके बावजूद वह कारावास जाने से बच नहीं सके. बहरहाल जब गय्यूम के खिलाफ फौज की एक टुकड़ी ने बगावत की, तब भारतीय कमांडो की कुमुक ने ही उनकी गद्दी बचायी थी. तभी से गय्यूम के मन में यह आशंका घर कर गयी कि भारत पर अपनी निर्भरता घटाने में ही भलाई है अन्यथा वह कभी भी हस्तक्षेप कर सकता है. इसलिए उन्होंने चीन तथा पाकिस्तान से घनिष्टता बढ़ायी. इस काम को यामीन ने अंजाम तक पहुंचा दिया.

मालदीव की संसद के चुनावों में नशीद के दल की निर्णायक विजय भारत के लिए संतोष का विषय है . हालांकि, कुछ ही महीने पहले राष्ट्रपति चुनावों में भी यामीन को नाटकीय हार का मुंह देखना पड़ा था .

भारत की कोई इच्छा अपने किसी भी पड़ोसी देश के आंतरिक मामलों में दखलंदाजी की नहीं है, पर निश्चय ही वह इनकी भूमि का दुरुपयोग अपने विरुद्ध करने की साजिश को नजरंदाज नहीं कर सकता. हाल के वर्षों में यह संकट निरंतर बढ़ा है. रईसों की ऐशगाह समझा जानेवाला मालदीव दहशतगर्दों का शरण्य भी बन गया है. सरकार ने स्वयं इस्लामी कट्टरपंथ को प्रोत्साहित किया, साथ ही दुर्गम दूरदराज द्वीपों पर तस्करों की गतिविधियों को जड़ से समाप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया गया.

कुल मिलाकर मालदीव की संसद के चुनावों में नशीद के दल की निर्णायक विजय भारत के लिए संतोष का विषय है. हालांकि, कुछ ही महीने पहले राष्ट्रपति चुनावों में भी यामीन को नाटकीय हार का मुंह देखना पड़ा था. पर इससे यह नतीजा निकालने की जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए कि अब भारत के राष्ट्रहित यहां निरापद हैं. चीन और पाकिस्तान इतनी आसानी से हार माननेवाले नहीं. दोनों के लिए जनतांत्रिक चुनाव गौण है और उनके हथकंडे परदे के पीछे जारी रहेंगे. फिलहाल नयी सरकार चीन के साथ सौदों को उतनी आसानी से खारिज नहीं कर सकती, जितनी आसानी से यामीन ने भारत को ठुकराया था. भारत के लिए सतर्क रहना ही बुद्धिमानी है.

कुछ ऐसी ही स्थिति इस्त्राइल में बेंजामिन नेतन्याहू की पांचवीं लगातार जीत ने भी भारत के लिए जटिल चुनौती के रूप में पेश की है. हाल के वर्षों में यह देश भारत के लिए सैनिक साजो-सामान की खरीद का प्रमुख स्रोत बनकर प्रकट हुआ है और सीमांती तकनीक तथा वैज्ञानिक शोध में भी हमारा सामरिक साझेदार है. हम दोनों देशों की खुफिया एजेंसियों के बीच जानकारी का आदान-प्रदान कट्टरपंथी इस्लामी दहशतगर्दों का मुकाबला करने में उपयोगी साबित हुआ है. जब से मोदी ने प्रधानमंत्री के रूप में कार्यभार संभाला है, इस्त्राइल की अहमियत लगातार बढ़ी है. इसका एक कारण अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप का इस्त्राइल की पीठ पर वरदहस्त है. ईरान की नाक में नकेल कसने के लिए अमेरिका इसी मोहरे का प्रयोग करता रहा है. दिक्कत सिर्फ यह है कि इस्त्राइल के नजदीक जाने के चक्कर में भारत अपने पारंपरिक मित्रों-ईरान, फिलिस्तीन, लेबनान से दूर होता जा रहा है. पश्चिम एशिया की अंतरराष्ट्रीय राजनीति बहुत अस्थिर है. वहां शक्ति-समीकरण तेजी से बदल रहे हैं. सऊदी अरब आज सर्वशक्तिमान संपन्न सर्वप्रमुख नहीं. सीरिया में ईरान, लेबनान तथा रूस की स्थिति अमेरिका के हिमायतियों से कहीं बेहतर है, इस्लामी खिलाफत को हराने का सेहरा इन्हीं के सर बांधा जा रहा है. इस्त्राइल की बड़ी चिंता गोलान ऊंचाइयों पर बैरी सेनाओं का कब्जा है. नेतन्याहू दक्षिणपंथी ही नहीं, कट्टर फिलिस्तीन विरोधी भी हैं. उनका बस चले तो वह फिलिस्तीनी शरणार्थियों वाले इलाके का विलय ही कर डालें. जेरूसलम में राजधानी के स्थानांतरण से उन्होंने निश्चय ही फिलिस्तीनियों को उकसाने का प्रयास किया. भारत ट्रंप के दबाव में भी इस्त्राइल के हर गलत फैसले का समर्थन नहीं कर सकता. वैसे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस्त्राइल की कोई ऐसी अपेक्षा हमसे नहीं. वह इसी में संतुष्ट है कि हम उसके सामरिक साझेदार बन चुके हैं.

भारत के लिए यह याद रखना उपयोगी रहेगा कि चुनाव जीतने के बावजूद नेतन्याहू भ्रष्टाचार के गंभीर आरोपों से बरी नहीं हुए हैं. उनकी जीत से इस्त्राइली समाज का विभाजन, पीढ़ीगत संघर्ष या राजनीतिक असंतोष समाप्त होनेवाला नहीं. उनके प्रतिपक्षी गैंट्ज की पार्टी बहुत पीछे नहीं है, इसलिए यह चुनौती बरकरार रहेगी.

राष्ट्रीय राजनीति में आदिवासी

डॉ अनुज लुगुन
सहायक प्रोफेसर, दक्षिण बिहार केंद्रीय विवि, गया
anujlugun@cub.ac.in

लोकसभा चुनाव के लिए भाजपा ने अपने वरिष्ठ आदिवासी नेता कड़िया मुंडा को टिकट नहीं दिया. कड़िया मुंडा ने हमेशा की तरह विनम्रतापूर्वक अपनी पार्टी के निर्णय को स्वीकार कर लिया और कहा कि वे अब फिर से अपने खेतों में हल-बैल के साथ समय गुजारेंगे. ऐसे समय में जब राजनीति का अपराधीकरण होता जा रहा है, कड़िया मुंडा की सादगी एक मिसाल है. वे भारतीय राजनीति के राष्ट्रीय परिदृश्य में ऐसे आदिवासी नेता हैं, जो लोकसभा के उपाध्यक्ष भी रहे. इसके बावजूद एक सवाल हमेशा उनका पीछा करता रहेगा कि राष्ट्रीय राजनीति में उनकी छवि का प्रभाव क्या है? क्या उनकी छवि उनके ही दल के अन्य कद्दावर नेताओं के समक्ष खड़ी की जा सकती है? या कभी मीडिया ने उनके राष्ट्रीय व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश की? यह सवाल सिर्फ कड़िया मुंडा से जुड़ा सवाल नहीं है. यह सवाल दिवंगत वरिष्ठ नेता पीए संगमा से भी जुड़ा हुआ है, जो लोकसभा के अध्यक्ष भी रहे. यह सवाल हर आदिवासी नेता का पीछा करता है. सवाल राष्ट्रीय राजनीति में आदिवासी मुद्दा और उनके नेतृत्व का है.

देश की संसदीय राजनीति में हमें राष्ट्रीय छवि का कोई आदिवासी नेता दिखायी नहीं देता, जो संपूर्ण भारत के आदिवासी समुदायों का प्रभावी चेहरा हो. यह विडंबना ही है कि जयपाल सिंह मुंडा के बाद संसदीय राजनीति में राष्ट्रीय छवि का प्रभावी आदिवासी नेतृत्व उभर कर नहीं आया. भले ही उन्होंने अलग झारखंड राज्य की मांग को अपनी राजनीति के केंद्र में रखा था, लेकिन उनकी वैचारिकी आदिवासियत की थी, जो देश के विभिन्न समुदायों में बंटे आदिवासियों को संबोधित करती थी. वे न केवल पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों से जुड़े रहे, बल्कि नागा समस्या को हल करने में भी उन्होंने सक्रिय पहल की. उन्होंने नागा विद्रोहियों के शीर्ष नेता जापू फिजो से भी बात की और उन्हें हमेशा सलाह दी कि नागाओं को भारतीय राज्य के अंदर ही अपनी अधिकतम स्वायत्तता को सुनिश्चित करने की लड़ाई लड़नी चाहिए. जयपाल सिंह मुंडा न सिर्फ आदिवासी पक्ष को राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में रख रहे थे, बल्कि उनका प्रभाव नेहरू और कांग्रेस के अन्य नेताओं पर था. कांग्रेस उनके नेतृत्व के उभार और लोकप्रियता से हमेशा चिंतित रही. जब उनके द्वारा गठित 'आदिवासी महासभा' 'झारखंड पार्टी' के रूप में तब्दील होकर 1952 के चुनाव में उतरी, तो उसने अप्रत्याशित प्रदर्शन करते हुए न केवल लोकसभा की तीन सीटों पर जीत हासिल की, बल्कि उसने बिहार विधानसभा की तैंतीस सीटों को भी जीत लिया था. उसके इस प्रदर्शन ने राष्ट्रीय दलों की नींद उड़ा दी थी. कांग्रेस को इससे सबसे बड़ा धक्का लगा था. जयपाल सिंह मुंडा जिस तरह राष्ट्रीय राजनीति में प्रभावी होकर हस्तक्षेप करते रहे, वह आगे चलकर आदिवासी नेताओं से क्यों नहीं संभव हो पाया? कुछ समय के लिए शिबू सोरेन में इसकी झलकी मिली थी, लेकिन वे बहुत दूर तक प्रभावी सिद्ध नहीं हो सके.

नेतृत्व के विचार के साथ ही जुड़ा हुआ एक और सवाल है. क्या बिना आदिवासी मुद्दों के राजनीतिकरण के राष्ट्रीय नेतृत्व का उभार संभव है? जयपाल सिंह मुंडा, जापू फिजो या शिबू सोरेन की लोकप्रियता की वजह यह रही कि इन्होंने आदिवासी मुद्दों को राष्ट्रीय फलक पर उभारा. झारखंड राज्य की मांग का मुद्दा राष्ट्रीय राजनीति में प्रभावकारी रहा. उसी तरह जापू फिजो के नेतृत्व में उठी नागाओं की मांग भी राष्ट्रीय मुद्दा बनी. कथित मुख्यधारा की दिकू राजनीति तो आदिवासी मुद्दों को हमेशा उपेक्षित करती रही. बाद के दिनों में क्षेत्रीय आदिवासी राजनीति के प्रतिनिधि भी आदिवासी मुद्दों को चिन्हित करने में सफल नहीं हुए, जबकि आजादी के बाद आदिवासी समाज सबसे ज्यादा अस्मिता और अस्तित्व संकट से घिर गया. वह विकास की मार, जल, जंगल और जमीन की लूट, विस्थापन, पलायन और राजकीय हिंसा का शिकार बना. इस तरह के आदिवासी मुद्दों को राजनीतिक दलों द्वारा उपेक्षित करने का परिणाम यह हुआ कि आदिवासी समाज का मजबूत जुड़ाव गैर-संसदीय राजनीति यानी नक्सल आंदोलनों के साथ हो गया. आदिवासी मुद्दों को तो कभी राष्ट्रीय दलों ने ईमानदारी से उठाया ही नहीं. सामाजिक न्याय की राजनीति करनेवाले राजनीतिक दल भी आदिवासियों को अपने एजेंडे में शामिल नहीं करते. उन पर लगनेवाले फर्जी देशद्रोह के मुद्दों तक पर भी चुप रहते हैं. तो क्या यह समझा जाये कि संसदीय राजनीति में दिकू विचार की तरह आदिवासी समाज को उपेक्षित ही माना जाता है? या, लोकतंत्र की बहुमत वाली राजनीति में बड़ा वोट बैंक न होने से आदिवासी समाज का कोई मुद्दा नहीं है? क्या बड़ा वोट बैंक ही किसी भी नेतृत्व को राष्ट्रीय राजनीति के शीर्ष पर बैठाने में सक्षम है? अगर ऐसा है, तो फिर इस लोकतंत्र में देश की आबादी में आठ प्रतिशत वाले आदिवासी समाज का भविष्य क्या होगा?

राष्ट्रीय राजनीति में आदिवासी नेतृत्व और मुद्दों की मांग को जातिवादी मांग नहीं माना जाना चाहिए. यह हमारे लोकतंत्र के भागीदारी करने और प्रतिनिधित्व के सिद्धांत पर आधारित है. इसी सिद्धांत के आधार पर लोकसभा चुनाव में अनुसूचित जनजाति के लिए कुल 545 सीटों में से 47 सीट आरक्षित हैं. अब जबकि चुनाव में उम्मीदवारों के निजी व्यावसायिक हित एवं दलों के एजेंडे इस सिद्धांत के ऊपर हावी हो गये हैं, ऐसे में आदिवासियों के मुद्दे फिर से गौण हो गये हैं. यह संसदीय व्यवस्था के लिए अच्छा संकेत नहीं है.

अब जबकि चुनाव में उम्मीदवारों के निजी व्यावसायिक हित एवं दलों के एजेंडे इस सिद्धांत के ऊपर हावी हो गये हैं, ऐसे में आदिवासियों के मुद्दे फिर से गौण हो गये हैं . यह संसदीय व्यवस्था के लिए अच्छा संकेत नहीं है .

बोधि वृक्ष

भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार समाज के कई स्तर पर होता है. भ्रष्टाचार का सबसे पहला स्तर आम जनता के मन मे होता है और उसे निकालना आवश्यक है. हम देवी और देवताओं को भी रिश्वत देते हैं. हम भगवान से कहते हैं कि आप मेरा यह काम कर दीजिये, तो फिर मैं आपको यह भेंट करूंगा. जो लोग मन्नत या इच्छाएं मांगते हैं, वह भी एक किस्म का भ्रष्टाचार ही है. यह ठीक है जब कोई सामान्य व्यक्ति भगवान को कभी कुछ अर्पित करना चाहे. लेकिन यह मत कहो कि मेरा काम होने पर मैं यह दूंगा. यह परंपरा सभी धर्मों में प्रचलित है. मन की यह स्थिति कि मेरा काम होने पर मैं यह या वह करूंगा, गलत है. यह नहीं होना चाहिए. जब आम जनता भ्रष्टाचार के विरोध मे खड़ी होकर रिश्वत नहीं देगी, तो फिर कोई रिश्वत कैसे लेगा? इसलिए हमें सबसे पहले रिश्वत देनेवालों को ठीक करना होगा. उन्हें बतायें कि रिश्वत नहीं देना है. हमें एक आध्यात्मिक लहर लानी होगी. फिर लोगो में एक आत्मविश्वास जागेगा और वे रिश्वत नहीं देंगे. जब आप किसी व्यक्ति को पैसा दिखाते हैं, तो उसे अपनी पत्नी और बच्चे याद आ जाते हैं और वह यह सोचता है कि मैं इसे ले लेता हूं. इसलिए जो लोग रिश्वत देते हैं, तो उन्हें रोकना जरूरी है. दूसरे किस्म का भ्रष्टाचार अधिकारियों के स्तर पर होता है. कई स्वयंसेवी यह कार्य कर रहे है; वे सरकारी अधिकारियों के टेबल पर एक पट्टी चिपका देते हैं, जिस पर लिखा होता है 'हम रिश्वत नहीं लेते'. फिर तो जो लोग रिश्वत देते हैं, वे भी इसे पढ़ कर रिश्वत नहीं देंगे. तीसरे किस्म का भ्रष्टाचार मंत्री स्तर पर होता है. सिर्फ लोकपाल विधेयक से बात नहीं बनेगी और समाज में उसके प्रति सजगता लानी होगी कि यह विधेयक क्या है और कैसे किसी को कानूनी सजा मिलेगी, जब कोई व्यक्ति भ्रष्टाचार में लिप्त होगा. यह कार्य समाज के हर स्तर पर करना होगा और लोगों का मनोभाव बदलना सबसे जरूरी है. यह सिर्फ आध्यात्म के द्वारा ही हो सकता है, क्योंकि भ्रष्टाचार की शुरुआत वहां से होती है, जहां पर अपनापन खत्म होता है.

श्रीश्री रविशंकर

आपके पत्र

मरते किसान और उजड़ते गांवों के लिए कौन है जिम्मेदार ?

भारतीय परिप्रेक्ष्य में कृषि और कृषक दोनों को एक 'लावारिस भैंस के बच्चे' जैसे छोड़ दिया गया है. किसान को अन्न उपजाने में लगनेवाले सभी साधन अत्यंत महंगे हो गये हैं. बिजली, बीज, उर्वरक, मजदूर, कीटनाशक आदि में कोई रियायत नहीं मिलती. साथ ही खेती के लिए जरूरी 'ट्रैक्टर' पर सर्वाधिक जीएसटी 28% लगा हुआ है. किसानों पर यह जीएसटी की सर्वोच्च दर क्यों है? फिर जब तैयार फसल बेचने की बारी आती है, तो बाजार के दलाल सत्तारूढ़ सरकारों की छत्रछाया में फसल को मनमाने मूल्य पर खरीदते हैं. मजबूरन किसान को उसी मूल्य पर बेचना ही पड़ता है. क्या कारण है कि अपने किसानों को कृषि घाटे से उबारने के लिए प्रति वर्ष 1.6 बिलियन करोड़ डालर सब्सिडी देने वाला अमेरिका और उसकी पालित संस्थाएं जैसे विश्व बैंक और डब्ल्यूएमएफ आदि यहां के किसानों को सब्सिडी देने से मना करते हैं. ऐसी विकट परिस्थितियों में भारतीय किसानों की दालानें, बैठकें वीरान तो हो ही जायेंगी, साथ ही भारतीय गांव भी वीरान होंगे.

निर्मल कुमार शर्मा , गाजियाबाद

बोरवेल को ढकने की व्यवस्था हो

लापरवाही हमेशा ही गलत नतीजे को अंजाम देती है. लापरवाही जब मासूमों के लिए जानलेवा हो जाये, तो निश्चित ही जघन्य अपराध की श्रेणी में रखी जायेगी. बोरवेल में गिरते बच्चे किसी शहर या मोहल्ले ही नहीं पूरे देश के लिए चुनौती हैं, फिर भी हमारे समाज की आंखें क्यों नहीं खुलती हैं? खुला बोरवेल छोटे बच्चों या छोटे जानवरों के लिए बेहद खतरनाक हैं. बेशक जब समाज अपनी जिम्मेवारियों से भागेगा, तो कानून को फर्ज निभाना होगा. कस्बों-मुहल्लों की सरकार से देश की सरकार तक को इस बड़ी समस्या का समाधान ढूंढना पड़ेगा.

एमके मिश्रा, रातू, रांची

राहुल के लिए वायनाड ही क्यों

राहुल गांधी ने दो लोकसभा सीटों पर चुनाव लड़ने का फैसला किया है. यूपी के अमेठी और केरल के वायनाड सीट का चयन हुआ है. इस फैसले ने कई सवाल खड़े किये हैं कि क्या अमेठी जिसे लंबे समय से कांग्रेस का अच्छा जनाधार माना जाता है, में अब राहुल गांधी को जीत की उम्मीद नहीं दिख रही? वायनाड सीट तो पहले से ही राहुल गांधी के बिना भी कांग्रेस जीतती आ रही है, तो फिर राहुल गांधी खुद वहां क्यों उम्मीदवार बनकर उतरे? दूसरा, वायनाड ही क्यों? दक्षिण भारत में कर्नाटक व अन्य राज्यों में भी कांग्रेस का अच्छा जनाधार है. कांग्रेस को अमेठी में जीत की राह आसान नहीं दिख रही है. वहीं वायनाड में उसे वामदल उन्हें कड़ी टक्कर दे सकती है. पिछले चुनाव से ही स्पष्ट हो गया था कि कांग्रेस के लिए वायनाड सीट पक्की है क्योंकि वहां उसे 41 फीसदी के करीब वोट मिले थे, जबकि सीपीआइ को 39 फीसदी. अब यह तो आने वाला वक्त ही बतायेगा कि वायनाड सीट का चुनाव करना कितना सही होता है.

शुभम गुप्ता, धनबाद

कुछ अलग

आचार की संहिता

संतोष उत्सुक
वरिष्ठ व्यंग्यकार
santoshutsuk@gmail.com

आचार संहिता सख्ती से लगी हुई है, लेकिन सरकारी सड़क की तरह यहां, वहां और कहां-कहां टूट-फूट भी रही है. यह मौसम कांच का होता है, जिसे तोड़ने के लिए लोकतांत्रिक बेकरारी का नटखट 'कन्हैया', इसके लगने की घोषणा के साथ ही अवतरित हो जाता है. विकासजी निढाल हो जाते हैं, घोषणाओं की योजनाओं और योजनाओं की घोषणाओं का आचार डलने से रह जाता है. विपक्ष पूरे विश्वास के साथ सरकार बनाने की घोषणाएं 'मुफ्त' में करता है.

ईवीएम का शुक्रिया अदा करना चाहिए कि अनुशासन सिखाने में कसर नहीं छोड़ी, वरना व्यक्तिगत या संस्थानिक आर्मी के मुखिया इस फिराक में रहते हैं कि कब मिर्चों के आचार का मटका फोड़ें और खाकर आईसीयू में भरती हों, ताकि राजनीतिक कीमत आसमान चढ़े. जीभ कहती है कि जो मजा अपने मनचाहे स्वादिष्ट आचार के साथ खाने का है, वह बिना आचार कहां? कितनी मेहनत, योजना और धन से विज्ञापन करवाते हैं, लेकिन उतरवाने पड़ते हैं. वैसे विचार किया जाये कि महंगे विज्ञापन बोर्ड उतरवाने की जरूरत नहीं, बल्कि इन पर वैधानिक चेतावनी चिपका देनी चाहिए, 'इसे पढ़ना नयी सरकार के गठन तक हानिकारक है, कृपया इस बोर्ड की तरफ न देखें'. इन पर सफेद कपड़ा लटका दें, तो शांतिप्रियता का विशाल प्रतीक बन सकता है. सरकार लौट आये, तो यही विज्ञापन प्रयोग कर देश की दौलत भी बचायी जा सकती है.

इस मौसम में अनाधिकृत निर्माण करनेवाले भी राजनीतिक चटखारे ले-लेकर नव निर्माण करने में लगे हैं, क्योंकि नगरपालिका के कर्मचारी आचार संहिता के अनुसार चुनाव करवाने में व्यस्त हो गये हैं. उनके पास किसी को भी हमेशा की तरह 'सख्त' नोटिस भेजने का समय नहीं है. इस दौरान धारा एक सौ चवालिस लगा दी जाती है. इसे न भी लगायें, तो क्या लोकतांत्रिक अनुशासन तो हमारे रोम-रोम में रचा बसा हुआ है. इस अंतराल में वोटरों को मुस्कुराहटों में तली वायदों की मसालेदार स्वादिष्ट चाट खाने को मिलती है, जिससे उनका स्वास्थ्य भी दुरुस्त हो जाता है.

चुनाव तो संहिता के अनुसार ही होता है, लेकिन हर आचार डालने के अपने अपने सिद्धहस्त फॉर्मूले होते हैं, लेकिन स्वादिष्ट वही डाल सकता है, जिसके हाथ में संतुलन, अनुभव और प्रतिबद्धता रहती है. संहिता लगते ही पेड 'खबरें' ही नहीं, पेड 'चैनल' भी रुक जाते हैं. सोशल मीडिया पर भी फर्क पड़ जाता है. तो सवाल है कि कहीं हमारे देशप्रेमी राजनेता इसका कोई फायदा तो नहीं उठाते? यह बात हम जानते हैं कि किसी भी व्यवसाय में लाभ कमाने के लिए साम, दाम, दंड, भेद का आचार प्रयोग करना ही पड़ता है. आचार स्वाद से भरपूर रहे और बाजार पर किसी तरह कब्जा कर ले, इसके लिए सब कुछ तो करना ही पड़ता है. यदि समय पर उपयोग न हो, तो स्वादिष्ट आम भी तो सड़ जाता है न. बुद्धिजन फरमा रहे हैं आचार खाना शुरू करने के बाद झूठे आरोप न लगायें. क्या सच्चे आरोपों की खटास से गला खराब नहीं हो जायेगा?

देश दुनिया से

बेहतर कर रही है भारतीय अर्थव्यवस्था

भारत में आम चुनाव की शुरुआत हो गयी है. इस माहौल में भारतीय आर्थिक स्थिति को लेकर फिर से बहस तेज हो गयी है. साल 2014 से 2018 तक जीडीपी विकास दर के 6.7 प्रतिशत व इससे ऊपर स्थिर बने रहने के कारण प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में शीर्ष स्थान पर विद्यमान रहने में इसे मदद मिली है. इससे इनकार नहीं कि भारतीय अर्थव्यवस्था बेहतर कर रही है. साल 2014-18 के दौरान औसत वार्षिक जीडीपी विकास दर 7.2 प्रतिशत से अधिक रही, जबकि अन्य आर्थिक संकेतक जैसे मुद्रास्फीति दर और जीडीपी अनुपात में भी कमी आयी है. कहना होगा कि घरेलू सुधार और एक अनुकूल अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण दोनों ने मिलकर भारत के आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया है. भारत ने विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए अपने कारोबारी माहौल में सुधार किया है. अंतरराष्ट्रीय आर्थिक वातावरण के कारण भी भारत को लाभ हो रहा है. हालांकि, कृषि क्षेत्र को चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है. भारतीय कृषि उत्पादन में वृद्धि जारी है, बावजूद इसके कृषि उत्पादों की कीमतें कम हुई हैं. वहीं निर्माण और सेवा क्षेत्र में कम वृद्धि देखी गयी है. जिसका अर्थ यह हुआ कि भारत के आर्थिक विकास का जनता को लाभ नहीं मिल रहा है.

GLOBAL TIMES

झैंग जियाडोंग

कार्टून कोना

साभार : कार्टूनमूवमेंटडॉटकॉम

पोस्ट करें : प्रभात खबर, 15 पी, इंडस्ट्रियल एरिया, कोकर, रांची 834001, **फैक्स करें** : 0651-2544006,
मेल करें : eletter@prabhatkhabar.in पर ई-मेल संक्षिप्त व हिंदी में हो . लिपि रोमन भी हो सकती है